DULF
DELHI UNIVERSITY LITERATURE FESTIVAL
| Nation First: Unity in Diversity |

NEWSLETTER | VOLUME 1 | ISSUE 4 | FEBRUARY 14, 2026 | FESTIVAL DATES: 12-14 FEB

“वंदे मातरम्: 150 वर्षों की गूंज ने जगाई राष्ट्रचेतना” डीयू लिटरेचर फेस्ट 1.0 में चंद्रचूड़ घोष ने कहा— यह गीत नहीं, भारत की आत्मा का स्वर है

अभिषेक कुमारतिवारी,
दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज़्म

देशभक्ति, इतिहास और सांस्कृतिक स्मृति की गूंज के बीच दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव के दूसरे दिन आयोजित सत्र “वंदे मातरम्: राष्ट्रीय आत्मा के जागरण के 150 वर्ष में श्रोताओं का सभागार राष्ट्रचेतना से सराबोर दिखा। सत्र के मुख्य वक्ता लेखक और शोधकर्ता चंद्रचूड़ घोष ने वंदे मातरम् के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक आयामों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि यह रचना केवल एक राष्ट्रीय गीत नहीं, बल्कि भारत की आत्मा का स्वर है, जिसने पीढ़ियों को जोड़ते हुए स्वतंत्रता की चेतना को जीवित रखा।

Image Credits: Utkarsh Yadav for DULF

प्रोफेसर संगीत रागी और लेखक अनिर्बान गांगुली के साथ बातचीत में घोष ने कहा कि वंदे मातरम् ने औपनिवेशिक शासन के दौर में लोगों को साहस, आत्मसम्मान और एकता की प्रेरणा दी। यह गीत आंदोलनकारी नारों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि जनमानस में सांस्कृतिक आत्मविश्वास का स्रोत बना। उन्होंने रेखांकित किया कि आज भी वंदे मातरम् नई पीढ़ी को अपनी जड़ों से जोड़ने का कार्य करता है और इतिहास को भावनात्मक रूप से समझने की राह खोलता है।

घोष ने वंदे मातरम् की साहित्यिक पृष्ठभूमि पर बात करते हुए इसके रचयिता बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि उपन्यास आनंदमठ में मातृभूमि को केवल भूभाग नहीं, बल्कि चेतना, श्रद्धा और कर्तव्य के जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है। वंदे मातरम् इसी भाव का काव्यात्मक विस्तार है, जिसमें राष्ट्रप्रेम आध्यात्मिक अनुभूति के रूप में प्रकट होता है।

विवादों के संदर्भ में घोष ने स्पष्ट किया कि आज तक कोई ठोस प्रमाण यह सिद्ध नहीं कर सका है कि आनंदमठ या वंदे मातरम् में किसी प्रकार की धर्मविरोधी भावना निहित है। उन्होंने कहा कि जिन वर्गों ने ऐतिहासिक रूप से इस

का विरोध किया, उनमें से कई औपनिवेशिक सत्ता के प्रभाव में थे। इसके समानांतर उन्होंने यह भी रेखांकित किया कि स्वतंत्रता आंदोलन के समय अनेक मुस्लिम समुदायों के लोगों को इस गीत से कोई आपत्ति नहीं थी और वे समान रूप से आंदोलन में सहभागी रहे। इस अर्थ में वंदे मातरम् किसी एक समुदाय का नहीं, बल्कि साझा राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक रहा है।

घोष ने राष्ट्रगान जन गण मन और उसके रचयिता रवीन्द्रनाथ टैगोर का उल्लेख करते हुए कहा कि जैसे हम राष्ट्रगान का सम्मानपूर्वक गायन करते हैं, वैसे ही वंदे मातरम् के सभी अंतरों को समझकर और भाव के साथ गाया जाना चाहिए। इससे इतिहास के प्रति संवेदनशीलता बढ़ती है और नागरिक चेतना मजबूत होती है।

1947 के बाद की परिस्थितियों पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा कि विभाजन और वैचारिक दूरियां अचानक नहीं बनीं, बल्कि समय के साथ गलत धारणाओं और परिस्थितियों से विकसित हुईं। आज की आवश्यकता, उन्होंने कहा, इतिहास को संतुलित दृष्टि से समझने की है ताकि संवाद और सामंजस्य को बढ़ावा मिले। वंदे मातरम् इस संवाद का सशक्त माध्यम बन सकता है, क्योंकि यह साझा सांस्कृतिक विरासत की याद दिलाता है।

सत्र के समापन पर घोष ने कहा कि वंदे मातरम् को हमने लंबे समय तक औपचारिक स्मृति के रूप में रखा, उसके भाव को पूरी तरह आत्मसात नहीं किया। 150 वर्ष पूरे होने के इस अवसर पर समय है कि हम इसे समझें, गुनें और जीवन में उतारें। कार्यक्रम इस संदेश के साथ समाप्त हुआ कि सच्ची राष्ट्रीयता सम्मान, समावेश और साझा विरासत से जन्म लेती है—और वंदे मातरम् उसी भावना का जीवंत प्रतीक है।

“हमें ‘सेल्फ सेंसरशिप’ का पालन करना चाहिए : अंजना ओम कश्यप

हिमांशु शेखर त्रिपाठी, हर्ष प्रकाश झा और शुभांश तिवारी, दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज़्म

दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव के अंतर्गत आयोजित ‘हल्ला बोल’ सत्र में वरिष्ठ पत्रकार अंजना ओम कश्यप ने सहभागिता की। सत्र प्रश्नोत्तर प्रारूप में संपन्न हुआ। उन्होंने अपने व्यावसायिक अनुभव, मीडिया-दृष्टि और समसामयिक प्रश्नों पर अपने विचार रखे।

मीडिया संस्थानों ‘आज तक’ और ‘इंडिया टुडे’ के संदर्भ में उन्होंने संस्थान को ऊँचाई तक ले जाने की प्रतिबद्धता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि संस्थान की प्रतिष्ठा निरंतर परिश्रम से निर्मित होती है। विद्यार्थियों से आह्वान किया कि वे ऐसे कार्य करें जो विश्वविद्यालय को सशक्त बनाएँ। उन्होंने कहा कि किसी भी अवसर को छोड़ना नहीं चाहिए क्योंकि अवसर का त्याग प्रगति में बाधक है और कहा कि युवाओं को बड़े सपने देखने और निर्भीक रहने का संदेश दिया।

हालिया वैश्विक राजनीति और भारत के संबंध में पूछे गए प्रश्न के बारे में बताते उन्होंने कहा कि पिछले दिनों जो ‘मदर ऑफ ऑल डील’ हुई उससे भारत की वैश्विक साख बहुत मजबूत हुई। बहुत से देशों के साथ हमारा शून्य-शुल्क पर समझौता है जो किसी भी विकासशील राष्ट्र के लिए बहुत अच्छी बात है।
मीडिया सेंसरशिप और राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्न पर उन्होंने स्वीकार किया कि कमियाँ हैं और उन्हें दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। ‘आजतक’ और अपनी संपादकीय नीति पर बात करते हुए उन्होंने गर्व से कहा, “हम लगातार पत्रकारिता को सुधारने का प्रयास कर रहे हैं। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा हमें बेहतर बनाती है, लेकिन हमारा मूल मंत्र वही है| ‘आजतक’ हमेशा वही करता है जो ‘राष्ट्र’ को प्रथम रखता है।”

टीआरपी और प्रतिस्पर्धा के संदर्भ में उन्होंने स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि अपनी लकीर लंबी खिचनी चाहिए न कि दूसरे की नहीं मिटानी चाहिए। हमें चुनौतियों का सामना करने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए, न कि ‘नॉन-स्ट्राइकर’ छोर पर खड़े होकर दूसरों के खेलने का इंतजार करना चाहिए। उन्होंने युवाओं को प्रेरित किया कि “रिस्क लेने से कभी मत डरिए क्योंकि जो जोखिम उठाता है, वही इतिहास लिखता है।” एक पत्रकार के रूप में अपने सबसे कठिन क्षणों को साझा करते हुए उन्होंने रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के साक्षात्कार का जिक्र किया। बताया कि वह एक बहुत बड़ी चुनौती थी, जहाँ हर शब्द और हर सवाल का अंतर्राष्ट्रीय महत्व था। उन्होंने रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के साक्षात्कार को अब तक का सबसे कठिन साक्षात्कार बताया। अपने बचपन को याद करते हुए अंजना ने रांची के दिनों का जिक्र किया। उन्होंने महानगरों और छोटे शहरों के बीच के द्वंद्व को बहुत खूबसूरती से परिभाषित किया। उन्होंने कहा, “छोटे शहर की परवरिश हमें

Image Credits: Mr. Lalit for DULF
Anjana Om Kashyap with moderator Prof. Deepti Taneja

अपने सपनों के लिए ‘जिद्दी’ होना सिखाती है। वहां सुविधाओं का अभाव हो सकता है, लेकिन हौसलों की उड़ान वहीं से शुरू होती है।” उन्होंने स्पष्ट किया कि आपका जन्म स्थान कभी भी प्रतिभा का बाधक नहीं बन सकता। कार्य और परिवार के संतुलन पर उन्होंने कहा कि अभिभावक बच्चों के मित्र बनें। उन्होंने ‘लेस स्क्रीन टाइम’ पर बल दियाऔर कहा कि बच्चों को पुनः पुस्तकीय अध्ययन की ओर लाना आवश्यक है। आज की पीढ़ी के संघर्ष पर बात करते हुए उन्होंने ‘डिजिटल डिस्ट्रैक्शन’ को सबसे बड़ी बाधा बताया और कहा कि “आज की पीढ़ी का संघर्ष पिछली पीढ़ियों से कहीं अधिक है, क्योंकि उन्हें सूचनाओं के असीमित प्रवाह और डिजिटल शोर के बीच अपना ध्यान केंद्रित रखना है।” ‘विकसित भारत’ के संदर्भ में उन्होंने अध्ययन, जागरूकता, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार समझौतों और स्व-रोजगार की आवश्यकता पर बल दिया। प्रो. दीप्ति तनेजा और अंजना ओम कश्यप के बीच का यह संवाद डीयू साहित्य महोत्सव के आकर्षण का प्रमुख रहा। अंजना ने न केवल एक सफल पत्रकार के रूप में, बल्कि एक जिम्मेदार पूर्व छात्रा और एक संवेदनशील नागरिक के रूप में अपनी बात रखी। सत्र में परिश्रम, अनुशासन, प्रतिस्पर्धा और राष्ट्रीय प्राथमिकता को प्रमुख आधार के रूप में रेखांकित किया गया। संवाद संक्षिप्त, संतुलित और विचारोत्तेजक रहा जहाँ पत्रकारिता के अनुभवों के साथ युवाओं के लिए स्पष्ट संदेश भी उपस्थित था।

Editorial: A Day When Dialogue Found Depth

Dr Sanjay Verma
Convener, Printing and Publishing Committee & OSD, Delhi School of Journalism

The second day of the Delhi University Literature Festival began with remembrance, and unfolded into reflection.

In the morning session of Dastangoi - "कहत कबीर" - the hall did not feel like a venue. It felt like an inheritance being gently reopened. Through the cadence of voice and the interweaving of melody, Kabir did not appear as a historical figure but as a living conscience. His verses celebrated scholarship when paired with humility, honored ritual infused with awareness, and valued learning enriched by introspection. In that shared silence between story and song, one sensed that literature is not preserved in books alone - it survives in the act of attentive listening. From this inward gaze, the day moved toward contemporary urgency. When Anjana Om Kashyap returned to her alma mater, and reflected on her journey from a student of social work at Delhi University to a national media voice, the conversation carried both warmth and weight. Her recollections of growing up in Ranchi, and the stubbornness required to protect one's dreams were not nostalgic detours; they were reminders that perspective is shaped early. Journalism, she emphasised, is responsibility before it is visibility. In an age defined by digital distraction and instantaneous judgment, her counsel was direct: do not rush to conclusions. Do not be careless with information. Take risks, but do not compromise integrity. Healthy competition strengthens institutions. Ethical restraint strengthens journalism. The message resonated not merely as advice to aspiring reporters but as guidance for all those who work with words.Across the day, this theme of responsibility echoed in different forms.
Discussions on moral frameworks, leadership, and the idea of Bharat, invited participants to examine how nations are imagined and narrated. Conversations on knowledge and creativity explored how societies shape their intellectual futures. Questions were not avoided. Differences were articulated without descending into hostility. What distinguished these sessions was not unanimity, but seriousness. Universities are most alive when ideas are tested rather than rehearsed. On this day, halls were filled not just with attendance, but with attention. Students leaned forward, not out of obligation, but curiosity. Speakers responded thoughtfully, often engaging directly with questions from the audience. Dialogue extended beyond allotted time slots, spilling into corridors and staircases. The theatre performance later in the afternoon offered another dimension. On stage, literature became movement. Narrative acquired breath. Silence became expressive. In that collective stillness - where a hundred individuals listened as one - it became clear that storytelling, whether ancient or contemporary, retains its power simply because it invites participation. The book stalls carried their own quiet conversations. After sessions on nationhood or identity, students searched for texts that extended those debates. Some sought historical sources; others contemporary analysis. Books were purchased not as souvenirs, but as continuations. A literature festival finds its measure not only in applause, but in what leaves the venue in a reader's hand. As evening approached, the atmosphere softened. Discussions on mental wellbeing introduced another necessary dimension - reminding us that intellectual growth must coexist with emotional awareness. The cultural evening that followed transformed the campus once again. Music, devotion, and rhythm - the energy shifted from argument to collective experience. Under the open sky, the festival became less about positions, and more about presence. Behind every visible moment stood an invisible effort. Student reporters capturing key insights. Editors refining newsletters late into the night. Designers aligning visuals under deadline pressure. Volunteers ensuring seamless transitions between sessions. A festival of ideas rests on the discipline of many hands. There is now one day left. If the first day announced the festival and the second day deepened it, the final day must consolidate it. Conversations initiated in the morning have matured by evening. Perspectives encountered across sessions have complicated assumptions and sharpened questions. A literature festival is not measured solely by its speakers, nor even by its themes. It is measured by the seriousness with which its participants engage. On the second day, engagement replaced anticipation. Dialogue replaced declaration. Reflection replaced reaction.
One more day remains. Let us enter it with the same attentiveness with which we listened to Kabir, the same seriousness with which journalism was discussed, the same openness with which ideas were debated, and the same collective spirit with which music closed the evening. The festival has found its depth. Today, it must find its direction.

DULF Newsletter Editorial Board

Chief Editor
Dr Sanjay Verma
Convener, Printing and Publishing Committee
and
OSD, Delhi School of Journalism

Editorial Board Members
Dr Satya Prakash Singh, Dr Vikas Singh, Dr Abdullah Khan, Dr Jyoti Arora, Dr Mercy Jill Jill, Dr Rishi Kesh Singh, Mr Lalit Kumar, Dr Yatin Batra, Dr Rakesh Kumar Dubey, Dr Anuj, Dr Deepa Rani, Dr Anshula Garg, Ms Epshita Kanaujia, Mr Sumit Kumar Pandey, Mr Bhaskar Hari Sharma, Saslang Jamatia

Design and Layout
Alaina Amlan, Kousik Das, Vaibhav Kashyap, Akhil Ronak, Prachi Yadav, Sayan Das

Photographers
Harshwardhan, Md. Shafiul Islam Mahin, Ananya Anand, Kumar Sameer Anand, Utkarsh Yadav, Rishi Kashyap, Priya, Muskan,

VCIS Interns
Abhishek Kumar, Khushboo Singh, Avni Agarwal, Kritikaa Gandhi, Megha Joshi

LitFest Student Team
Ishita Arora, Harsh Prakash Jha, Shubhansh Tiwari, Ananya Singh, Kanishka Jha, Ashutosh Din, Ankit Kumar, Gauri, Yash Vardhan, Shrishti Kumari, Shubhangi Kshitiza Saurav

ज्ञान हमारी विरासत है, बाजार की वस्तु नहीं

डॉ. अनुज
दिल्ली स्कूल ऑफ़ जर्नलिज़्म

अध्ययन कोई क्षणिक गतिविधि नहीं, बल्कि जीवन भर चलने वाली साधना है। आवश्यकता केवल इतनी है कि इस साधना के मार्ग में हम स्वयं बाधा न बनें। पढ़ना–लिखना हमारी सभ्यता और परंपरा की आधारशिला रहा है, परंतु दुर्भाग्यवश आज इसे केवल अर्थार्जन का साधन मान लिया गया है। जबकि मानव की आदि मानव से लेकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) तक की यात्रा के मूल में निरंतर अध्ययन, चिंतन और मनन की यही साधना रही है।

अध्ययन ही वह शक्ति है जो मानव को अन्य जीवों से अलग पहचान देती है। इसी के बल पर मानव ने न केवल प्रकृति और पर्यावरण को अपने अनुकूल ढाला, बल्कि मशीनों को भी सोचने की क्षमता की ओर अग्रसर किया। आज जिसे हम एआई और मशीन लर्निंग कहते हैं, वह मानव की इसी बौद्धिक तपस्या का परिणाम है। किंतु यह सब तभी संभव होता है जब अध्ययन रुचि के अनुरूप हो बिना दबाव, बिना भय और बिना किसी बाहरी मजबूरी के।इसी संदर्भ में साहित्यिक महोत्सवों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। ऐसे आयोजनों का उद्देश्य केवल कार्यक्रम करना नहीं, बल्कि पढ़ने–लिखने की परंपरा को आगे बढ़ाना, विशेषज्ञों के विचारों को सुनना और गहन अध्ययन के माध्यम से अपनी शंकाओं का समाधान करना है। किसी नए विषय पर वक्ता को सुनते समय यदि वह विषय रुचिकर लगे, तो उस पर अपनी पकड़ बनाना ही अध्ययन की सार्थकता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के उद्घाटन सत्र में कुलपति प्रो. योगेश सिंह ने इस बात पर बल दिया कि अध्ययन बाजार की मांग के अनुरूप भी होना चाहिए अर्थात किन क्षेत्रों में अवसर हैं, कौन से विषय समाज, मानव कल्याण और विश्व के लिए उपयोगी हैं। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि शिक्षकों, शोधार्थियों और छात्रों को पाठ्यक्रम से इतर विषयों का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। जैसे हम यह मूल्यांकन करते हैं कि पाठ्यक्रम की कितनी पुस्तकें पढ़ीं, वैसे ही यह भी देखना चाहिए कि पाठ्यक्रम से बाहर कौन-कौन से विषयों को अपने अध्ययन में शामिल किया। यह हमारी समझ और ज्ञान को और अधिक समृद्ध करता है। इसे औपचारिकता नहीं, बल्कि एक सतत 'ट्रैक रिकॉर्ड' की तरह अपनाना चाहिए कि अब तक क्या पढ़ा और आगे क्या पढ़ना है।

आज अतिथियों को उपहार स्वरूप पुस्तकें देने की परंपरा बढ़ रही है, जो स्वागतयोग्य है। परंतु यह भी विचारणीय है कि उन पुस्तकों को वास्तव में कितने लोग पढ़ते हैं। कई बार पुस्तकें केवल सोशल मीडिया पर साझा करने या अलमारी में सजाने का माध्यम बन जाती हैं। देश और दुनिया में अनेक प्रकार के विचार पनपते हैं कुछ रचनात्मक, कुछ विध्वंसक। विश्वविद्यालय सभी संवैधानिक विचारों के लिए आश्रयस्थली होते हैं। किंतु यदि अध्ययन कमजोर हो, तो विपरीत विचार सामने आते ही उन्हें हटाने की प्रवृत्ति जन्म लेती है। मजबूत अध्ययन और होमवर्क हो, तो विचारों का प्रतिवाद तर्क और ज्ञान से किया जा सकता है। इसका कोई शॉर्टकट नहीं इसके लिए स्वयं और विरोधी, दोनों विचारों का अध्ययन आवश्यक है।

कुलपति ने तुलसीदास का उदाहरण देते हुए कहा कि उनकी रचनाएं आत्मसंतोष के लिए थीं, पर आज वे भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। जब अध्ययन रुचि के अनुरूप होता है, तब हम लाभ–हानि की गणना नहीं करते। व्यस्ततम समय में भी हम वही करते हैं जो हमें प्रिय होता है और तभी कुछ अद्वितीय सृजन संभव होता है।

उन्होंने यह भी चेताया कि हम "मिट्टी में चलने वाले लोग हैं, संगमरमर पर हमारे पैर फिसलते हैं।" अर्थात हमें अपने राष्ट्र, राष्ट्रधर्म और स्वधर्म के अनुरूप पढ़ना–लिखना चाहिए। जो विचार या दृष्टि किसी अन्य संदर्भ में उपयुक्त हो, वह हमारे लिए अनुकूल ही हो यह आवश्यक नहीं। आयातित विचारों को बिना आत्मसात किए अपनाना फिसलन का कारण बनता है। कथनी और करनी में अंतर नहीं होना चाहिए। इसके लिए हमें अपने कंफर्ट जोन से बाहर निकलकर परिश्रम और तप करना होगा। केवल बड़ी-बड़ी बातें करने से कुछ हासिल नहीं होता; बिना श्रम के सब व्यर्थ है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के जनसंपर्क अधिकारी एवं साहित्य महोत्सव के संयोजक अनूप लाठर ने कहा कि यह महोत्सव आज एक बीज के रूप में अंकुरित हुआ है, जो भविष्य में एक विशाल वटवृक्ष बनेगा क्योंकि "होनहार बिरवान के होत चिकने पात।" वरिष्ठ पत्रकार अनंत विजय ने बताया कि अब हिंदी के प्रति देश व दुनिया में लोगों का नजरिया बदल रहा है। अब वैश्विक पटल पर भी हिंदी को हम सुन सकते हैं।

हिंदी भी अन्य भाषाओं की तरह एक माध्यम है। अब हिंदी बोलने में लोग गर्व का अनुभूति करते हैं। देश व दुनिया की कई दिग्गज कंपनियां हिंदी में काम कर रही हैं। मीडिया के कंटेंट निर्माण में मीडिया संस्थानों के साथ दर्शक भी निर्णायक भूमिका में होते हैं। हमें देखना होगा कि आज किस तरह के कार्यक्रम की टीआरपी सर्वाधिक है। कंटेंट को बनाते समय दर्शकों की मांग को भी केंद्र में रखा जाता है। अकादमिक जगत में भी भारतीय विचार परम्परा आधारित शोध को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

कार्यक्रम की श्रृंखला में पद्मश्री डेविड फ्रॉली (पंडित वामदेव शास्त्री) ने रामायण और महाभारत की वैश्विक प्रासंगिकता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि ये ग्रंथ केवल धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि मानव जीवन को सही मार्ग दिखाने वाले अनुपम ज्ञान-भंडार हैं, जिनका उद्देश्य विश्व कल्याण है। अंततः निष्कर्ष यही है कि अध्ययन कोई बोझ नहीं, बल्कि साधना है और इस साधना के मार्ग में सबसे बड़ी चुनौती बाहरी नहीं, हमारी अपनी उदासीनता है। यदि हम स्वयं बाधा न बनें, तो अध्ययन हमें व्यक्तित्व, समाज और राष्ट्र तीनों स्तरों पर समृद्ध कर सकता है।

“अभिनय में अनुभव जरूरी है, लेकिन उससे भी ज्यादा जरूरी है आपकी ‘कल्पना शक्ति’:अभिनेता पंकज त्रिपाठी

‘सपने तत्काल नहीं होते, ठहरिये और पकिये’: पंकज त्रिपाठी ने डीयू के मंच पर डिकोड किया अभिनय का ‘व्याकरण’ और जीवन का ‘ठहराव’

हिमांशु शेखर त्रिपाठी, हर्ष प्रकाश झा और शुभांश तिवारी
दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज़्म

साहित्य महोत्सव (DULF) के एक महत्वपूर्ण सत्र ‘नौटंकी’ में पंकज त्रिपाठी ने सिनेमा, रंगमंच और जीवन के गहरे संबंधों पर अपनी बात रखी। इस सत्र का संचालन डॉ. शांतनु बोस ने किया, जो स्वयं एक प्रतिष्ठित रंगकर्मी और शिक्षाविद हैं। खचाखच भरे श्रोताओं को संबोधित करते हुए पंकज त्रिपाठी ने अभिनय की प्रक्रिया, जीवन के अनुभवों और कल्पना की शक्ति पर विस्तार से चर्चा की।

पंकज त्रिपाठी ने कहा, “अभिनय केवल संवाद अदायगी नहीं है, बल्कि उस ‘चुप्पी’ को साधने की कला है जो शब्दों के बीच में होती है।“ उन्होंने अभिनय को अनुभव और कल्पना के संयोजन के रूप में परिभाषित किया। उन्होंने छात्रों को संबोधित करते हुए कहा, “अभिनय में अनुभव जरूरी है, लेकिन उससे भी ज्यादा जरूरी है आपकी ‘कल्पना शक्ति’। कई बार हम ऐसे किरदार निभाते हैं जिन्हें हमने असल जिंदगी में नहीं जिया। ऐसे में, कल्पना शक्ति से ही आप अपने अभिनय को सुधार सकते हैं।“

“जब आप कोई रोल करते हैं और उस सिलसिले में देश घूमते हैं, तो आप वहां की हर संस्कृति को समझ जाते हैं। यह यात्राएं ही मेरे अभिनय की पाठशाला हैं,” उन्होंने जोड़ा।

परदे पर खूंखार ‘विलन’ का किरदार निभाने के लिए भी जाने जाने वाले पंकज त्रिपाठी ने बताया कि वे किसी भी नकारात्मक किरदार को उसके ‘पारिवारिक रिश्तों’ पर अप्लाई करके देखते हैं। उन्होंने कालीन भैया जैसे किरदारों का उदाहरण देते हुए समझाया कि एक अपराधी भी किसी का पिता, किसी का बेटा या किसी का पति होता है। जब आप उस ‘बुरे आदमी’ के भीतर के ‘पारिवारिक आदमी’ को ढूंढ लेते हैं, तो वह किरदार एक आयामी नहीं रहता, वह जीवंत हो उठता है।

सत्र का सबसे भावुक और साहित्यिक क्षण वह था जब पंकज त्रिपाठी ने हिंदी साहित्य के मूर्धन्य कवि केदारनाथ सिंह को याद किया। उन्होंने मंच से केदारनाथ सिंह की प्रसिद्ध कविता “जैसे दिया सिराया जाता है...” का पाठ किया। पंकज त्रिपाठी के मुख से, उनकी विशिष्ट शैली में इस कविता को सुनना श्रोताओं के लिए एक रोंगटे खड़े कर देने वाला अनुभव था। कविता समाप्त करने के बाद उन्होंने कहा, “भाषा के ऊपर इससे अच्छी कविता नहीं हो सकती है।“ उन्होंने बताया कि एक अभिनेता के लिए भाषा केवल संवाद बोलने का जरिया नहीं, बल्कि उसकी ‘स्मृतियों’ का द्वार है। “हम अभिनेता थोड़े भावुक होते हैं, कविता पढ़ते ही हमें अपनी स्मृतियाँ आ जाती हैं। इन्ही स्मृतियों के सहारे हम अपने प्राचीन समय में जाकर अपनी पारिवारिक परंपरा से जुड़ जाते हैं।“

Image Credits: Utkarsh Yadav for DULF

चर्चा के दौरान जब डॉ. शांतनु बोस ने उनसे राजनीति में आने की संभावना पर सवाल किया, तो पंकज ने अपनी विनम्रता और स्पष्टता से सबका दिल जीत लिया। उन्होंने कहा, “राजनीति में अच्छे लोगों को आना चाहिए, यह देश के लिए जरूरी है। लेकिन वहां पहले से ही बहुत अच्छे लोग हैं।“ इसके बाद उन्होंने मुस्कुराते हुए जोड़ा, “लेकिन मेरे जैसे ‘भावुक’ व्यक्ति की वहां कोई जगह नहीं है। राजनीति में कठोर निर्णय लेने पड़ते हैं और एक कलाकार के तौर पर मैं दिल से सोचता हूँ।“ उनका यह जवाब उनकी सादगी और आत्म-बोध का परिचायक था।

आज की युवा पीढ़ी, जो ‘इंस्टेंट सक्सेस’ के पीछे भाग रही है, उसे पंकज त्रिपाठी ने एक गहरा जीवन-दर्शन दिया। उन्होंने चिंता व्यक्त करते हुए कहा, “आज कल सपने भी ‘तत्काल’ हो गए हैं। सबको सब कुछ अभी चाहिए।“ अपने जीवन में मौजूद प्रसिद्ध ‘ठहराव’ के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा, “मैं स्वभाव से एक ‘आरामपरक’ व्यक्ति हूँ। मेरे जीवन में जो ठहराव है, वह इसी आरामपरक स्वभाव से आया है। मैंने सीखा है कि भागने से कुछ प्राप्त नहीं होगा; जो मिलना है, वह सही समय पर ही मिलेगा।“ उनका यह कथन डीयू के छात्रों के लिए एक ‘मंत्र’ बन गया। उन्होंने समझाया कि दौड़ना अच्छी बात है, लेकिन यह पता होना चाहिए कि दौड़ किस दिशा में है। बिना उद्देश्य की भागदौड़ केवल थकान देती है, सफलता नहीं।

सत्र के अंतिम चरण में, जब उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों से सीधा संवाद किया, तो उन्होंने सफलता के तीन मूल मंत्र दिए। उन्होंने कहा, “छात्र जीवन में केवल तीन शब्द ही महत्त्व रखते हैं—समर्पण, प्रेम और प्रेरणा। अगर आपके पास अपने काम के प्रति समर्पण है, अपने विषय से प्रेम है और कुछ कर गुजरने की प्रेरणा है, तो दुनिया की कोई ताकत आपको रोक नहीं सकती।“ सत्र के समापन पर, जब पंकज त्रिपाठी ने अपनी बात समाप्त की, तो वहां कोई उन्मादी शोर नहीं था, बल्कि एक विचारशील और सम्मानजनक तालियों की गड़गड़ाहट थी। डॉ. शांतनु बोस ने अत्यंत कुशलता से इस संवाद को एक दार्शनिक ऊँचाई पर समाप्त किया। यह सत्र ‘नौटंकी’ इस बात का प्रमाण था कि सच्चा कलाकार वह नहीं जो मंच पर आकर छा जाए, बल्कि वह है जो अपने जाने के बाद दर्शकों के भीतर एक ‘विचार’ छोड़ जाए। पंकज त्रिपाठी ने डीयू के छात्रों को यह सिखाया कि जीवन और कला में ‘सादगी’ ही सबसे जटिल और सबसे प्रभावशाली आभूषण है।

जय हिन्द! राष्ट्र प्रथम!

Dastangoi brings Kabir’s words alive at DU Literature Festival

Ishita Arora
Delhi School of Journalism

The first session of Day Two of the Delhi University Literature Festival unfolded not as a conventional discussion, but as an immersive cultural experience. The session titled “Dastangoi: कहत कबीर,” storyteller Syed Sahil Agha and Sufi singer-academic Dr Neeta Pandey Negi brought the verses of Sant Kabir alive through the centuries-old oral tradition of Dastangoi, transforming the opening session of Day Two into a reflective performance on faith, truth and lived wisdom rather than a conventional literary discussion.
The performance resonated strongly with the festival’s overarching theme, “Nation First: Unity in Diversity.”

Rooted in a 13th-century Persian storytelling tradition that flourished across the Indian subcontinent, Dastangoi is an art form where history, imagination and performance converge. Through voice modulation, gestures and narrative intensity, the dastango does not merely narrate a story but reanimates it.

The collaboration between spoken narrative and song created a rhythmic dialogue that held the audience in rapt attention.

Before the performance began, Md Shams Equbal from the National Council for Promotion of Urdu Language was felicitated by the organisers. His presence highlighted the institutional and cultural importance of preserving linguistic and artistic traditions, reinforcing the idea that literature festivals are not only platforms for debate, but also spaces for safeguarding living heritage.

The session opened with a brief contextual note, reminding the audience that Dastangoi is not simply performance but remembrance. Through this art, the past does not remain distant or static; it breathes again. The narrative began by exploring the spiritual world of Amir Khusro and Hazrat Nizamuddin Auliya, tracing the intimate bond between the Sufi saint and his devoted disciple. These early stories established a contemplative mood, grounding the audience in a tradition where devotion, humility and wisdom flow through word and music.

As Syed Sahil Agha narrated, his storytelling was marked by expressive gestures, deliberate pauses and tonal shifts that brought each episode alive. After every narrative segment, Dr Neeta Pandey Negi’s voice rose in song, weaving dohas and melodies that deepened the emotional and philosophical resonance of the tales. This alternating rhythm of narration and music created a seamless flow, allowing the audience to absorb Kabir’s ideas not as abstract philosophy, but as lived experience.
At the heart of the session were the teachings of Kabir, presented as more than a distant moral instruction. Kabir emerged as a living presence rather than a historical

Image Credits: Utkarsh Yadav for DULF

figure confined to dates and texts. Stories unfolded of Kabir confronting scholars surrounded by books yet disconnected from wisdom; of a mysteriously spun cloth whose unmatched purity unsettled social hierarchies; and of Kabir’s refusal to trade truth for wealth, recognition or power.

These narratives were not delivered as sermons. Instead, they were enacted moments that invited inward reflection, challenging the audience to examine their own assumptions about faith, knowledge and identity. Kabir’s verses, rendered through Dastangoi, cut across religious and social boundaries, speaking to universal human dilemmas.

In the larger context of the literature festival, “Dastangoi: कहत कबीर” stood out as a powerful reminder of India’s plural cultural inheritance. Urdu and Hindi, Sufi music and Bhakti philosophy, Persian storytelling and Indian spiritual thought came together effortlessly, embodying the idea that unity emerges not from uniformity but from dialogue across traditions, languages and generations.

As the session drew to a close, the atmosphere in the auditorium remained charged. With songs echoing and audience members quietly singing along, Kabir’s presence felt unmistakably alive. Through the art of Dastangoi, his words transcended time, reminding listeners that true literature does not merely survive, it continues to teach, question and unite.

The Delhi University Literature Festival continues with sessions exploring literature, culture and ideas through performance, debate and dialogue over the coming days.

At DU Lit Fest, panel reflects on dharma, leadership and India's civilisational ideas

Kshitiza Shubhangi Saurav
Shreya (Research Scholar Hindi Department)

As debates around nationalism, leadership and identity intensify in public life, a panel at the Delhi University Literature Festival turned to an older framework for answers, dharma. Titled "India's Moral Compass: Dharma, Leadership and the Nation," the session brought together author and commentator Hindol Sengupta, spiritual leader Chanchalapati Dasa, and senior journalist Anand Narasimhan for a wide-ranging discussion on ethics, spirituality and the idea of Bharat as a civilisational nation.

Opening the conversation, Chanchalapati Dasa sought to clarify the meaning of dharma, a term often loosely translated as "duty." Dharma, he said, is better understood as the essential nature of a being, something inseparable from one's existence. Quoting the Sanskrit phrase "Dharman sākṣāt bhagavat-praṇītam," he explained that true dharma originates from the divine order, not merely from social or legal norms. Leadership, he argued, when rooted in spiritual understanding, can balance material progress with inner well-being.

Responding to a question on the idea of rashtra, Hindol Sengupta described India not simply as a modern nation-state but as a civilisational entity whose core has remained intact despite centuries of political change. "India exists because of its civilisational essence," he said, arguing that governments and rulers may come and go, but the underlying cultural and spiritual continuity has sustained the nation. For India to function meaningfully as a nation, Sengupta added, its people must recognise this shared inheritance rooted in dharma.

The discussion then moved to questions of personal identity and leadership. Chanchalapati Dasa drew a distinction between apara-prakriti (material nature) and para-prakriti (spiritual nature), explaining that while the physical body is temporary, the spirit soul is eternal. True leadership, he said, emerges when duties are defined not only by material success but by spiritual awareness. All beings, he noted, are part of the divine, and practices such as meditation, chanting and self-discipline help individuals align with that larger reality.

Journalist Anand Narasimhan, moderating the conversation, raised questions on how spiritual wisdom can coexist with the pressures of modern leadership. Can one, he asked, "sing, dance and lead" at the same time? Responding to this, Chanchalapati Dasa said spiritual knowledge is especially meant for leaders, as it equips them to take balanced decisions in complex situations. He spoke about the importance of meditation and chanting, including the sacred syllable "Om," stressing that while the body is transient, spiritual consciousness endures.

Elaborating on devotion in leadership, Chanchalapati Dasa highlighted the Vaishnava belief that Krishna and His name are inseparable. Chanting, he said, is not ritualistic repetition but a means of cultivating awareness, compassion and inner clarity,0p qualities essential for ethical leadership.

Sengupta, meanwhile, reflected on the

Image Credits: Lalit for DULF

Gaudiya Vaishnava tradition, describing it as cosmopolitan and pluralistic in outlook. He urged the audience to develop conceptual clarity about Indian civilisational ideas by engaging seriously with classical texts and historical examples. References to Chanakya's political thought and the global influence of Srila Prabhupada, he said, offer valuable insights into how Indian ideas have historically balanced pragmatism with ethics.

The panel also addressed questions of competition and morality in contemporary society. Responding to audience queries, Chanchalapati Dasa argued that while competition is inevitable, it must be guided by ethical conduct rather than aggression. On apparent contradictions in the life of Krishna, he clarified that Lord Rama's life provides an ideal model for human conduct, whereas Krishna's divine leelas are not meant to be imitated. Instead, he said, Krishna's teachings in the Bhagavad Gita offer guidance for ethical action.

As the session drew to a close, the panelists converged on the idea that spirituality need not be confined to private life. Dharma, when understood as an ethical and spiritual foundation, they agreed, can guide leadership, strengthen institutions and reinforce India's civilisational identity. In a time marked by political polarisation and moral uncertainty, the discussion suggested that ancient frameworks may still offer relevant tools for navigating the future.

While the session culminated with the take away "India Exists because of its Civilizational Essense", the Delhi University Literature Festival continues with sessions examining literature, culture and ideas through dialogue, performance and debate.

सावरकर को सेल्युलर से सेक्युलर जेल: प्रफुल्ल केतकर

इशिता अरोड़ा
गौरव
डॉ अनुज

दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव के महत्वपूर्ण कार्यक्रम में "भारत बोध : अंडरस्टैंडिंग भारत बियॉंड कॉलेनियल फ्रेम्स" इस कार्यक्रम में ऑर्गनाइजर पत्रिका के संपादक प्रफुल्ल केतकर तथा पूर्व केन्द्रीय सूचना आयुक्त उदय माहुरकर ने अपने विचार रखे। कार्यक्रम का संचालन डॉ प्रेरणा मल्होत्रा ने किया। हमारी इतिहास कि स्मृति को विस्मृत किया गया है के सम्बन्ध में बोलते हुए प्रफुल्ल केतकर ने कहा कि हमें इतिहास को भारतीय दृष्टि से पढ़ना होगा, हमें पश्चिम के चश्में तथा पश्चिम के सिद्धांतों से बचना होगा। अंग्रेज जहाँ भी गए वहाँ कि संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट किया। भारत की जनजातीयों को अलग से नोटीफाई किया तथा जरायमपेशा जैसा कानून बनाकर भारतीय समाज को विखंडित किया। भारत की महान रचनाओं जैसे वेद, उपनिषद, महाभारत व रामायण आदि को माइथोलॉजी कहा । पुन: उन्होंने एक प्रश्न के साथ बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि ग्रीक व भारत की रचनाओं को माइथोलॉजी क्यों कहा जाता है ? जबकी अन्य रचनाओं को माइथोलॉजी नहीं कहा जाता है। हमें भारतीय इतिहास को भी ईसा पूर्व व ईसा पश्चात ग्रेगैरियन कैलेंडर के अनुरूप दिखाया और पढ़ाया गया। अंग्रेजों ने पूरी दुनिया को ईसा के जन्म के समय से तय करने का बौद्धित षड़यंत्र रचा और इसी भारतीय इतिहास एवं संस्कृति इसी षड़यंत्र का शिकार हुई। इसी संदर्भ में अपनी बात रखते हुए उदय माहुरकर ने बताया की देवबंद आर्य समाज के बीच एक खास किस्म का द्वंद था। आर्य समाज ने हिंदु धर्म को जोड़ने का कार्य कर रहा था, ऐसे में देवबंद के लोगों को यह भय हुआ कि पूरा मुस्लिम समुदाय आर्य समाज के प्रभाव में आकर हिंदू न बन जाए। इसलिए उन्होंने तत्कालीन राजनीति का मिजाज भांपते हुए कारेंस से नजदीकी बढ़ाई और अपने लोगों को नेहरू कांग्रेस में शामिल किया। आगे उन्होंने कहा कि जैसा हम सभी जानते हैं कि भारत के पहले शिक्षा मंत्री डॉ अबुल कलाम आजाद देव बंदी थे। और यहीं से शुरू हुआ भारतीय इतिहास के पहले से व्याप्त औपनिवेशिक दुर्गुणों के साथ आक्रांताओं का महिमा मंडन शुरू हुआ। इसे हम के. एम. मुंशी के इतिहास की किताब से समझ सकते हैं। भारत के औपनिवेशिक मानसिकता से बाहर निकलने के बारे में प्रफुल्ल केतकर ने कहा कि भारत में 1955 के बाद भाषाई विवाद उग्र हुआ मैकाले की शिक्षा के कारण, यह विवाद राज्यों के बंटवारे के रूप मे दिखा। हम राजनैतिक रूप मे तो 1947 मे आजाद हो गए परंतु मानसिक, सांस्कृतिक व बौद्धिक रूप से आज भी हम औपनिवेशिक गुलाम है। संस्कृत भाषा जो पूरे देश को एकता के सूत्र में पिरोने की क्षमता रखती थी, उस भाषा को पूजा-पाठ की भाषा कहा जाने लगा। वह भाषा जिसमें जिसमें ज्ञान, विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र तथा धातु विज्ञान, ज्योतिष आदि गुण विषय दिए गए थे। उस भाषा को औपनिवेशिक शिक्षा ने लगभग खत्म कर दिया और उसके बाद बचीखुची संभावनाओं को खत्म करने का कार्य आजादी के बाद की सरकार और व्यवस्था ने किया । भारत से बाहर धर्म पर प्रश्न करने को ही विज्ञान की उत्पत्ति माना गया। भारतीय संस्कृति में तर्क को आधार माना गया। भारत की संस्कृति तर्क पर आधारित संस्कृति है। उदय माहुरकर ने कहा की भारत में इतिहस व्याख्या आयोग की जरूरत है। हिंदू माइथॉलजी की जगह हिंदू इतिहास शब्द पर जोर देना चाहिए। वीर सावरकर के साथ इतिहास ने न्याय नहीं किया। एक मात्र व्यक्ति जिन्हें दो बार काला पानी की सजा हुई। प्रफुल्ल ने इस बारे में कहा कि सावरकर को सेल्युलर जेल से सेक्युलर जेल हुई। आजादी के पहले सेल्युलर जेल आजादी के बाद सेक्युलर जेल। भारत 1949 – 1975 तक सेक्युलर राष्ट्र नहीं था। आपातकाल में जनप्रतिनिधियों को जेल में डाल कर गैर लोकतांत्रिक प्रक्रिया से संविधान में सेक्युलर शब्द जोड़ा गया। संविधान के प्रत्येक अध्याय के साथ मिलता हुआ चित्र था, इनमें राम, कृष्ण, शिव-शक्ति, नानक, बुद्ध, महावीर, शिवाजी के साथ-साथ अबकर का भी चित्र था। अकादमिक जगत में शोध के लिए मूल ग्रंथ के अध्ययन पर बल देना चाहिए। अंग्रेजों ने शब्दावली का खेल किया। हिंदु ठीक है पर उन्होंने हिंदू के साथ वाद जोड़ दिया, जिसे अंग्रेजी में इस्म (ism) हिंदुइस्म, बौद्धिस्म, जैनिस्म और सिखिस्म कहा। अंग्रेजों के द्वारा शुरू किए गए शब्दावी के इसी खेल ने धर्म और विचार में संस्कृति की जगह विवाद को स्थापित करने का घिनौना खेल खेला। दोनों वक्ताओं ने भारत बोध को समझने के लिए इतिहास, संस्कृति, समाज और दर्शन के समेकित अध्ययन और अनुसंधान पर बल दिया हैं।

Unsung heroes, shared lessons: rebuilding India through education at DU fest

Ashetosh Din
Delhi School of Journalism

Stories of grassroots service and quiet resilience took centre stage at the Delhi University Literature Fest 1.0, where social workers and educators spoke about rehabilitation, rebuilding and the idea of India as it moves towards 2047. Held under the theme "Nation First: Unity in Diversity," the session, titled "Seva Parmo Dharma: Rehabilitation and Rebuilding India, The Unsung Heroes," drew students, into a conversation on education as the most durable form of nation-building.

Addressing the gathering, Bhanupriya Bhatt, a social worker from Jodhpur, traced her journey of educating children for just Rs 1. "We don't need infrastructure to begin with, just one child, a piece of land and a committed teacher," she said, underscoring how intent can substitute scarcity. Through her rehabilitation and rebuilding initiative, Bhatt said more than 6,000 children, many of them street children, balloon sellers at traffic lights and students from tribal communities, have been brought into the fold of formal education.

From Maharashtra, Vijay Jadhav spoke about working with children who sing and sell goods on Mumbai's local trains. His focus, he said, has been on motivation alongside education, helping young people imagine futures beyond daily survival. Jadhav shared that his efforts have enabled hundreds of children to return home with access to schooling and a sense of direction.

Padma Shri awardee Girish Prabhune emphasised that education does not demand prior qualifications, only commitment. Recounting his decades-long engagement with the nomadic Pardhi community, he said learning is the key that unlocks dignity and opportunity. His work with marginalised groups earned him the Padma Shri in 2021.

The panel also featured Vrinda Khanna, who highlighted the role of collaboration between civil society and educational institutions. Together, the speakers urged students to view service not as charity but as responsibility.

In a symbolic moment, the speakers and Delhi University students took a collective pledge, affirming that Gen Z will shape India's next chapter. "This generation carries a unique responsibility," Bhatt noted, calling young people central to a landmark phase in Bharat's journey.

As the session concluded, a recurring message stood out: that India's road to 2047 will be paved not only by policy and infrastructure, but by countless individuals working quietly at the margins. Their stories, shared on a university stage, served as a reminder that nation-building often begins far from the spotlight.

शिक्षा का उद्देश्य केवल रोज़गार मात्र नहीं, बल्कि विवेक विकसित करना भी

Khushboo Singh
Dr. Rishikesh Singh (Faculty)

दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव में आयोजित पैनल चर्चा "विचार जो मायने रखते हैं: Knowledge, Creativity, and Society," केवल एक बौद्धिक संवाद नहीं था, बल्कि समकालीन समय के सबसे ज़रूरी सवालों से व्याख्यान करने का प्रयास भी था कि हम क्या सोचते हैं? क्यों सोचते हैं? और हमारी सोच हमें और राष्ट्र को किस दिशा में ले जा रही है! इस सत्र में डेटा वैज्ञानिक व लेखक संजीव नेवार और वरिष्ठ पत्रकार-लेखक स्वाति गोयल शर्मा ने अपने-अपने दृष्टिकोण से यह स्पष्ट किया कि विचार केवल बौद्धिक विमर्श तक सीमित नहीं होते, बल्कि वे समाज और राष्ट्र की दिशा भी तय करते हैं।

चर्चा का केंद्र बिंदु यह रहा कि विचार कोई निष्क्रिय सत्ता नहीं बल्कि मानवीय निर्णय, सामाजिक दिशा और राष्ट्र स्वरूप तय करने और गढ़ने की महत्वपूर्ण विधा है। संजीव नेवार ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मनुष्य और पशु के बीच वास्तविक अंतर बुद्धि या संसाधनों का नहीं, बल्कि विचार करने की क्षमता का है। उनके अनुसार इतिहास गवाह है कि जहां हर सभ्यता का निर्माण विचारों से हुआ वहीं उनका पतन भी विचारों के क्षरण से ही संभव हुआ। इतना ही नहीं जब सोच उधार की हो जाती है, तब समाज भी धीरे-धीरे अपनी मौलिकता खो देता है।

आज के डिजिटल युग पर बात करते हुए नेवर ने "अटेंशन इकोनॉमी" को एक गंभीर चुनौती बताया। उन्होंने कहा कि एल्गोरिदम यह तय कर रहे हैं कि व्यक्ति क्या देखे? क्या पढ़े? और अंततः क्या सोचे? यह प्रक्रिया विचार-शक्ति को सक्रिय करने के बजाय उसे सुस्त बना रही है। ऐसे में युवाओं के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि वे अपनी चेतना को नियंत्रित करेंगे या उसे नियंत्रित होने देंगे। उन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा का उल्लेख करते हुए कहा कि प्राचीन ग्रंथ विचारों को सीमित नहीं करते बल्कि बहुआयामी समझ के रूप में कर्म और उत्तरदायित्व की ओर प्रेरित करते हैं।

पत्रकार स्वाती गोयल शर्मा ने मीडिया और रचनात्मक उद्योग की भूमिका पर गंभीर प्रश्न उठाए। उन्होंने कहा कि आज कंटेंट निर्माण के क्षेत्र में मनोरंजन को प्राथमिकता दी जा रही है, जबकि सामाजिक उत्तरदायित्व पीछे छूटता जा रहा है। युवाओं द्वारा लगातार नकारात्मक और भावनात्मक रूप से थकाने वाले कंटेंट के उपभोग किए जाने पर उन्होंने चिंता जताई और कहा कि रचनात्मकता का उद्देश्य केवल ध्यान खींचना नहीं, बल्कि समाज को दिशा देना भी होना चाहिए। उन्होंने छात्रों से आग्रह किया कि वे मीडिया को केवल करियर विकल्प के रूप में न देखें, बल्कि उसके प्रभाव और ज़िम्मेदारी को भी समझें।

उन्होंने आजकल के माहौल में छात्रों और युवाओं को उपलब्ध मनोरंजन संबंधी कंटेंट की रचनात्मक आलोचना भी की। उनके अनुसार आजकल के बॉलीवुड गानों में दिखाई जाने वाली पाश्चात्य सोच और पश्चिमीकरण का छात्रों के विचारों पर प्रभावी असर पड़ रहा है। इनमें कई गाने न केवल सांस्कृतिक अवमूल्यन करते हैं, बल्कि बाजारीकृत उपभोक्तावाद पर जोर देकर छात्रों में कृत्रिम बदलाव को बढ़ावा भी दे रहे हैं। इसके साथ ही उन्होंने इस पक्ष पर भी बल दिया कि भारत के विश्वविद्यालयों का माहौल अब बदल रहा है, जिससे छात्र जीवन के लक्ष्य भी परिवर्तित हो रहे हैं। पहले अध्ययन और समग्र विकास प्राथमिकता थे, लेकिन अब वे अधिक व्यावसायिक और व्यक्तिगत लक्ष्यों की ओर बढ़ रहे हैं, जिन पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक है।

पूरी चर्चा के दौरान एक बात बार-बार उभर कर आई कि विचारों की तटस्थता भी एक चुनाव है। जो व्यक्ति सोचने से बचता है, वह अनजाने में दूसरों की सोच को अपना लेता है। छात्रों से संवाद करते हुए वक्ताओं ने यह आह्वान किया कि शिक्षा का उद्देश्य केवल रोज़गार नहीं, बल्कि विवेक विकसित करना भी होना चाहिए। यह सत्र इसलिए भी महत्वपूर्ण रहा कि श्रोताओं को इस सत्र ने खूब प्रश्नाकुल किया। ऐसे प्रश्न, जो सोचने पर मजबूर करते हैं और शायद यहीं से नए विचारों का जन्म होता है, ऐसे विचार, जो सच में मायने रखते हैं।

शिक्षा, अनुभव और परिवर्तन की यात्रा : कटिहार से कैनेडी वाया डीयू

Image Credit: Utkarsh for DULF
Prof Sudha Singh in conversation with Dr Sanjay Kumar

सुमित पाण्डेय, गौरव त्रिपाठी, नितिका गुप्ता
दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज़्म

दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव के अंतर्गत 'कटिहार से केनेडी वाया डीयू' नामक एक विशेष व्याख्यान में डॉ. संजय कुमार ने अपने शैक्षिक जीवन और अनुभवों को साझा करते हुए विद्यार्थियों को प्रेरित किया। इस सत्र का संचालन प्रो. सुधा सिंह ने किया। उन्होंने कहा कि वे स्नातक के दौरान दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र रहे। इसके पश्चात जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा अर्जित की।

डॉ. कुमार ने कहा कि दिल्ली विश्वविद्यालय और जेएनयू के शैक्षणिक परिवेश में पर्याप्त अंतर विद्यमान है। यहाँ का वैचारिक वातावरण व्यक्ति को सकारात्मक परिवर्तन की दिशा में प्रेरित करता है।

उन्होंने बताया कि दिल्ली विश्वविद्यालय में ऑनर्स विषय में सफलता प्राप्त करने के उपरांत उन्हें यह अनुभव हुआ कि जीवन में प्रगति हेतु सही दिशा और सतत परिश्रम का अत्यंत महत्व है।

यदि व्यक्ति एक ही स्थान तक सीमित रह जाता है, तो वह 'कुएँ के मेढ़क' के समान हो जाता है। अतः नवीन परिवेश में जाकर अधिगम और अनुभव प्राप्त करना अत्यावश्यक है।

आगे उन्होंने बताया कि दिल्ली विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने जेएनयू से एम.फिल. की उपाधि प्राप्त की तथा नौकरी के साथ-साथ पीएचडी भी पूर्ण की। उन्होंने इस तथ्य पर बल दिया कि परिश्रम और दृढ़ संकल्प वे प्रमुख गुण हैं, जिन्हें विश्वविद्यालय विकसित करता है और यही सफलता की वास्तविक कुंजी हैं।

एक उदाहरण साझा करते हुए कहा कि उन्होंने लिंक्डइन पर एक छात्रा की प्रोफ़ाइल देखी, जो दिल्ली विश्वविद्यालय में अपने कार्यों और उपलब्धियों को लेकर अत्यंत संतुष्ट थी। उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने के उपरांत भी निरंतर प्रयास और सक्रिय सहभागिता से उल्लेखनीय सफलता अर्जित की जा सकती है। अपनी पुस्तक का उल्लेख करते हुए शिक्षा व्यवस्था पर भी विचार व्यक्त किए। उन्होंने कहा कि पूर्व में सरकारी विद्यालयों में शिक्षा का स्तर निम्न था, किंतु वर्तमान समय में कुछ सकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। साथ ही यह भी कहा कि निजी विद्यालयों के समान सरकारी विद्यालयों में भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक है।

शब्द, मंच और साधना: साहित्य महोत्सव में डॉ. शांतनु बोस की थिएटर मास्टर क्लास

अंकित कुमार, डॉ विकास सिंह
दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज़्म

शंकर लाल कॉन्सर्ट हॉल में उस समय मंच केवल लकड़ी और रोशनी का ढाँचा नहीं रह जा रहा था, बल्कि वह संवेदना, स्मृति और अभ्यास का जीवित क्षेत्र बन रहा था। दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव के अंतर्गत आयोजित थिएटर मास्टर क्लास में रंगमंच पढ़ाया नहीं जा रहा था, बल्कि जिया जा रहा था। मंच पर उपस्थित प्रख्यात रंगमंच विद्वान डॉ. शांतनु बोस अभिनय को किसी तकनीक की तरह नहीं, बल्कि साधना की तरह समझा रहे थे।

छात्रों को संबोधित करते हुए डॉ. बोस यह स्पष्ट कर रहे थे कि अभिनय किसी पात्र को धारण करने की क्रिया नहीं होती, बल्कि स्वयं को खोलने की प्रक्रिया होती है। वे लंबे समय बाद मंच पर लौटने के अनुभव को साझा कर रहे थे और मंच को ऐसी स्मृति के रूप में देख रहे थे जो कलाकार को पहचान भी रही थी और उसे परख भी रही थी। उनके अनुसार रंगमंच केवल सह-पाठ्यक्रम गतिविधि नहीं रह जा रहा था, बल्कि एक समानांतर शिक्षा बन रहा था, जहाँ शरीर सोच रहा था और मन अनुशासन सीख रहा था।

वे अभिनय के तरीकों पर बात करते हुए शरीर-भाषा, दृष्टि, ठहराव, मौन और श्वास को अभिनय की मूल संरचना बता रहे थे। साहित्य महोत्सव की भावना से जुड़ते हुए डॉ. बोस रंगमंच को साहित्यिक पाठ की जीवंत व्याख्या के रूप में देख रहे थे। वे समझा रहे थे कि जब कोई रचनाशब्दों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि देह, गति और भाव में बदल रही होती है। इसी क्रम में वे पटकथा की केंद्रीयता पर ज़ोर दे रहे थे और कह रहे थे कि नाटक हो या सिनेमा, पटकथा उसकी आत्मा बन रही होती है। इसी संदर्भ में वे यह उल्लेख कर रहे थे कि फिल्मकार अनुराग वासु कभी पारंपरिक अर्थों में पटकथा नहीं लिख रहे थे, जो रचनात्मक स्वतंत्रता और संरचना के बीच के तनाव को दर्शा रहा था।

पटकथा के इतिहास पर चर्चा करते हुए वे भारतीय परंपरा में पौराणिक कथाओं को 'पाठ' के रूप में देखने की दृष्टि सामने रख रहे थे, जहाँ विचार और प्रस्तुति निरंतर नए रूप ग्रहण कर रही थीं। साथ ही वे यह भी कह रहे थे कि नवीनता के आकर्षण में लिखित पाठ से दूर जाना कला को क्षणभंगुर बना रहा था। उनके अनुसार प्रस्तुति की स्वतंत्रता तभी सार्थक बन रही थी, जब वह अनुशासन से जुड़ी रह रही थी। सत्र के दौरान ठुमरी शैली के संगीत का उल्लेख करते हुए डॉ. बोस यह समझा रहे थे कि एक ही पाठ की अनेक व्याख्याएँ प्रस्तुति को विशेष बना रही थीं। वे नाट्यशास्त्र का संदर्भ देते हुए रस, भाव और अभिनय की अवधारणाओं को आधुनिक संदर्भ में रख रहे थे। केरल की प्राचीन रंग परंपरा कूडियट्टम का उल्लेख करते हुए वे उसे मंदिरों से जुड़ी एक अर्ध-धार्मिक कला परंपरा बता रहे थे। कूडियट्टम के महान गुरु अम्मानूर माधव चाक्यार का उल्लेख करते हुए वे यह बता रहे थे कि अभिनय की परंपरा तीन से चार हज़ार वर्षों से निरंतर बह रही थी। कला इतिहासकार कपिला वात्स्यायन के विचारों के माध्यम से वे भारतीय कला की दार्शनिक गहराई को सामने रख रहे थे। चीन यात्रा के अनुभव साझा करते

Image Credit: Sameer for DULF

हुए डॉ. बोस वहाँ की कलात्मक दृष्टि और अनुशासन पर बात कर रहे थे। सिनेमा के संदर्भ में वे शॉट, फ्रेम और रैखिक संपादन की प्रक्रिया को समझा रहे थे और यह भी कह रहे थे कि आज का सिनेमा अभिनय से अधिक संपादन पर निर्भर होता जा रहा था। आधुनिक उपकरणों और उन्नत एडिटिंग तकनीकों से फिल्म निर्माण आसान हो रहा था, लेकिन वे यह भी स्पष्ट कर रहे थे कि तकनीक कला का साधन बन रही थी, उसका विकल्प नहीं। प्रसिद्ध शास्त्रीय गायिका किशोरी अमोनकर से जुड़ा प्रसंग साझा करते हुए वे यह कह रहे थे कि कोई भी प्रस्तुति कभी एक जैसी नहीं होती। एक ही नाटक को दो बार देखने पर उसका प्रभाव हर बार अलग हो रहा था, क्योंकि कलाकार और दर्शक दोनों की संवेदना बदल रही थी। सत्र के अंतिम हिस्से में स्टार वैल्यू, नकल की प्रवृत्ति और वैश्विक कला प्रतिस्पर्धा पर चर्चा चल रही थी।

एनएसडी में अपने छात्र जीवन की स्मृतियाँ साझा करते हुए डॉ. बोस यह कह रहे थे कि पूर्व-निर्धारित सिद्धांतों में बंध जाना किसी भी प्रदर्शन कला के लिए सबसे बड़ा खतरा बन रहा था। अंत में मुल्ला नसरुद्दीन का एक हल्का-सा किस्सा सुनाते हुए वे इतने गहन विमर्श को सहज मुस्कान में बदल रहे थे। प्रश्नोत्तर सत्र के दौरान रंगमंच में हिंसा के सामान्यीकरण, लघु-फॉर्म कंटेंट की बढ़ती लोकप्रियता और कला की सहनशीलता जैसे प्रश्न उठ रहे थे और उन पर गहन चर्चा चल रही थी। यह थिएटर मास्टर क्लास यह संकेत दे रही थी कि रंगमंच कोई क्षणिक आयोजन नहीं, बल्कि निरंतर चलने वाली साधना बन रहा था, जहाँ साहित्य, शरीर और समाज एक-दूसरे से लगातार संवाद कर रहे थे।

Young artists take centre stage as DU honours talents

Ashetosh Din
Delhi School of Journalism

From classical rhythms to eloquent speech, student talent took the spotlight on the second day of the Delhi University Literature Festival 1.0, as the University's Culture Council celebrated artistic excellence with awards and performances that reflected the creative depth of its campuses.

Organised by the Culture Council, in collaboration with colleges across the university, the festival offered a platform for students to showcase achievements earned on national stages over the past two years. The day opened with a prize distribution ceremony recognising students who represented the university at major inter-university cultural competitions in 2025 and 2026.

The event was attended by senior varcity officials, including Dr.Vikas Gupta, Registrar Anoop Lather, Chairperson of the Culture Council, Prof. Ravinder Kumar, Dean, Culture Council, Dr. Hemant Verma, Joint Dean, Dr. Anil Kumar Kalkal, Director, University Sports Council and Dr. Rajesh Singh, University Librarian.

Awards were presented to winners and rank holders of the 38th All India Inter-University National AIU Youth Festival, hosted at Amity University, Noida; the 39th AIU North-Central Zone Youth Festival at Maharishi Markandeshwar University; and the 38th AIU North-West Zone Youth Festival held at Om Sterling Global University, Hisar. Students who excelled at the Kamalnayan Bajaj National Elocution Competition in 2025 and 2026 were also felicitated.

Addressing the gathering, Prof. Ravinder Kumar credited the university's cultural growth to the leadership of Vice-Chancellor Yogesh Singh and the Culture Council's efforts in expanding opportunities for students beyond classrooms.
Following the ceremony, the festival shifted gears into performance mode. Over the three days, more than 120 performances by students from various colleges were scheduled, ranging from music and dance to theatre and literary arts. Together, they underlined the university's attempt to position culture as a vital part of academic life.

As applause echoed across the venue, the message was clear: at Delhi University, artistic expression is not an extracurricular afterthought, but a core part of student identity.

समय और आत्मा के रहस्य से रूबरू कराता 'काल–रूपम'

कनिष्का झा
दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज़्म

दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव के दूसरे दिन शंकर लाल ऑडिटोरियम में नाटक 'काल–रूपम' ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। कुलदीप कुणाल द्वारा लिखित और कशिश देवगन (केडी) द्वारा निर्देशित, यह प्रस्तुति चंडीगढ़ विश्वविद्यालय के कला एवं सांस्कृतिक विभाग की शानदार पेशकश थी।

यह नाटक वर्ष 1985 के चर्चित 'शिवा–सुमित्रा' प्रकरण से प्रेरित, पुनर्जन्म और आत्मा के रहस्यमयी सफर की अनूठी कहानी है। सुमित्रा की आत्मा शिवा के शरीर में प्रवेश करती है, और इस कथा में मातृत्व और माँ के प्रेम की असीम शक्ति को दिखाया गया है, जो मृत्यु और समय से परे है।

लगभग एक घंटे की इस प्रस्तुति में मंच सज्जा, प्रकाश और संवादों का संयोजन बेहद प्रभावशाली रहा। खास बात यह रही कि नाटक का पृष्ठभूमि संगीत और ध्वनि संयोजन स्वयं टीम ने तैयार किया, जिसने कथा की गंभीरता और रहस्य को और गहरा कर दिया।

कशिश देवगन, जो 22 वर्षों से रंगमंच से जुड़े हैं, ने इस संवेदनशील विषय को संतुलित और विचारोत्तेजक ढंग से प्रस्तुत किया। विद्यार्थियों के सशक्त अभिनय ने दर्शकों को अंत तक बांधे रखा, और प्रस्तुति को खूब सराहना मिली।

From L to R: Prof. V.K. Paliwal, Prof. Saloni Gupta, Prof. K Ratnabali, Pradeep Mohanty
Kashish Devgan (KD) Dr. Santanu Bose, Prof. Anil Rai

Kaal-Roopam: The Play of Love and Death

Ananya Singh
Delhi School of Journalism

In a haunting fusion of drama and music, Kaal-Roopam gripped audiences at Shankar Lal Auditorium, Delhi University. Written by Kuldeep Kunal and directed by Kashish Devgan, this play explores the mystical journey of Sumitra Singh, declared dead yet revived with another soul - Shiva Tripathi's. Set against the backdrop of 1985 Etawah, Uttar Pradesh, the narrative blurs boundaries between life, death, and identity. Kashish Devgan, the director, reveals his fascination with stories where emotions defy logic. "Motherhood transcends bodily and temporal limits," he says, encapsulating the play's essence. With original compositions and an unsettling setting, Kaal-Roopam challenges conventional notions of existence, leaving audiences with profound questions about love, duty, and survival.

Image Credits: Sameer Anand for DULF
Stills from the Play

DULF AT A GLANCE

Ms. Anjana Om Kashyap

Mr. Pankaj Tripathi

Audience at Multi-purpose Hall

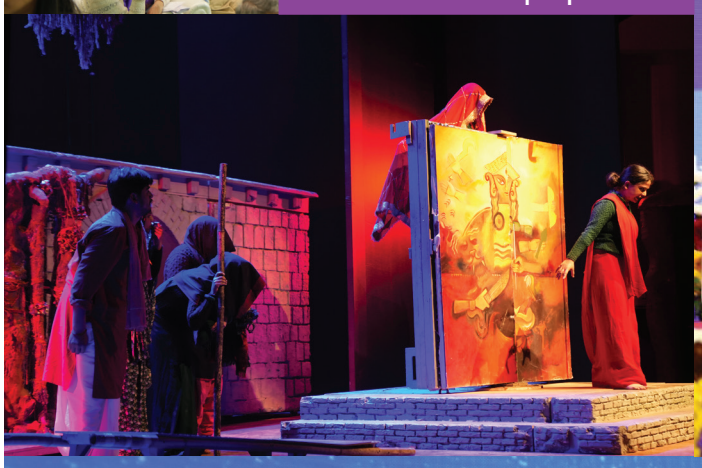

Piyush Mishra

Panel Discussion on Rashtra Dharma

Cultural performances at Rugby Ground

Day 02 at DULF 1.0: Publishers Cheer, Students Spend and Authors Connect

By Avni Agarwal
Delhi School of Journalism

Day 02 of the Book Bazaar at Delhi University Literature Festival (DULF) 1.0 witnessed an even stronger turnout, as students returned with friends and fuller wish-lists. What began as curiosity on the opening day transformed into conscious buying, active engagement and meaningful dialogue between readers, publishers and authors.

One of the most prominent stalls was that of the Gandhi Smriti Darshan Samiti, which brought a curated collection of books and souvenirs related to Mahatma Gandhi. The association carries deep historical relevance, as Gandhi spent his last 144 days at Gandhi Smriti in Delhi. Mohan from the Gandhi Smriti Darshan Samiti shared, "In the ongoing Delhi University Literature Festival 1.0, we have brought books and souvenirs related to Mahatma Gandhi because he spent his last 144 days at Gandhi Smriti. We provide a 40% discount on Gandhi Smriti books and a 20% discount on souvenirs related to Mahatma Gandhi." The substantial discounts drew consistent footfall. Students were seen picking up biographies, compilations of speeches and thought-provoking essays. For many, the reduced pricing made classic texts more accessible, while others described it as an opportunity to reconnect with Gandhian philosophy in contemporary times.

Publishers, too, expressed satisfaction with the response. Angoor Prakashan, based in Shakarpur and active in the publishing industry for three decades, marked the festival as a successful platform for outreach. Having published over 500 books across genres, the publishing house experienced enthusiastic engagement at its stall. Harish Gupta, Proprietor of Angoor Prakashan, remarked, "We have been in the industry for the last 30 years and have published 500 books across genres. At our stall at the first Delhi University Literature Festival, we received a great response. The event is a great success as the university has done a great job. We hope the university regularly conducts such events."

Another key trend visible on Day 02 was the rising popularity of contemporary Hindi literature among students. Author Priyamvada Dixit interacted with readers at the stall of Hindi Panktiyan, where her book Banarasi Afsane was displayed alongside other popular titles.

"Banarasi Afsane is receiving warm responses from people," she said, adding that students today prefer "new Hindi" writing. She observed that writers are consciously adapting their language and themes to connect with both traditional Hindi readers and a younger generation seeking relatable narratives. The crowd at her stall indicated a growing appetite for contemporary voices that blend cultural roots with modern sensibilities.

Innovation in presentation also captured attention. Aan Publishers, founded in 2012, showcased military history books, including comic book adaptations of India's military operations from 1947 to the present. Rishi, founder and creator, explained that converting stories of wars and war heroes into comic formats makes them easier to read and understand. Students appeared particularly drawn to this visual format, suggesting that accessibility and brevity are influencing current reading habits. Language preservation also found space at the festival. Representatives from the National Council for Promotion of Sindhi Language emphasised the importance of promoting Sindhi as a sweet and culturally rich language.

They expressed hope that Sindhi would be studied and appreciated in schools and colleges, much like other regional languages. Overall, Day 02 reflected a vibrant literary ecosystem. Attractive discounts encouraged purchases, publishers appreciated the organised platform and authors directly connected with their readership. The Book Bazaar at DULF 1.0 was not merely a commercial space but a dynamic meeting ground of ideas, identities and evolving student trends, proving that in the heart of the university, the culture of reading continues to flourish.

Image Credits: Aryan for DULF

WHAT DAY 2 REVEALED

Dr Vikas Singh, Alaina Amlan, Shrishti Kumari, Avni Agarwal

Day 2 did not echo Day 1. It evolved from it.

If the opening day carried ceremonial energy and celebratory participation, the second day settled into something more deliberate. The applause was still present, but it was measured. The excitement remained, but it was thoughtful. What unfolded across halls and corridors was not merely programming — it was intellectual engagement.

The tone shifted.

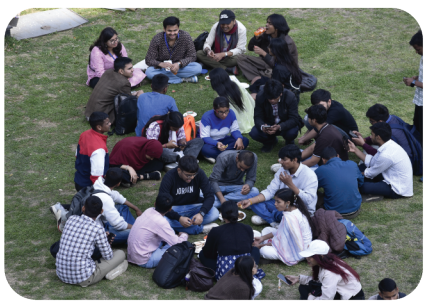

ARGUMENT WITHOUT HOSTILITY

FROM SPECTATORS TO PARTICIPANTS

PERFORMANCE AS COMMENTARY

THE CONFIDENCE OF YOUTH

WHAT REMAINS

VOICES OF A GENERATION

दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव का पहला दिन बहुत ही अनोखा था। मैं उदाहरण देना चाहूंगा मेरे पसंदीदा कलाकार हरिओम पंवार जी का जिन्होंने यहां सत्र को सम्बोधित किया।

इसी के साथ किताबों के कई स्टॉल्स पर जाकर कई नई पुस्तकों के बारे में जाना। दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव सच में अनेकता में एकता का जीवंत उदाहरण है।

Jatin Singh, Ramjas College

It was really really surreal. When you compare it with other festivals, we realise that the venue is very spacious and everything went smooth. The book stalls were a centre of attraction for bibliophiles like me.

Saumya, IPCW

The event is really nice. I came here for a book "The Power of Conscious Mind" which is a very amazing book that teaches us to never give up in life.

Also, the cultural performances in the Rugby ground were fabulous. I'm looking forward for the next two days.

Shrishti Kumari, Laxmibai College

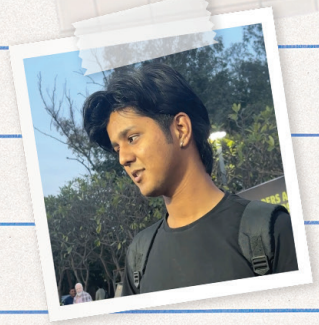

I'm delighted to be part of the Delhi University Literature Festival 2026. It's a vibrant space for creativity, dialogue, and discovery. I'm looking forward to engaging with inspiring voices and celebrating the stories that unite and define us.

Tanya Jaiswal, a student of Bcom program (3rd year), Shaheed Bhagat Singh Evening College, DU.

It's great to be here. The overall fest looks incredibly amazing. The Sessions were immensely knowledgeable. At the very same time, it's great to see the Indian Culture is also getting promoted at this level with all the performances happening day long. In a Nutshell, it's a complete package of Literature with National Pride.

Shrishti Kumari, Delhi School of Journalism

I was here for Piyush Mishra's session and it was really amazing. I really enjoyed all the sessions and the maintainance of the venue was very good. I'll surely come back to watch other sessions on 13th and 14th February.

Manya, Aryabhatta College

वीर, श्रृंगार और हास्य रस की त्रिवेणी में सराबोर दिल्ली विश्वविद्यालय का साहित्य महोत्सव

विशेष रिपोर्ट:शुभांश तिवारी और हर्ष प्रकाश झा
दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज्म

साहित्य जब अकादमिक विमर्श के दायरों से निकलकर मुक्त आकाश के नीचे आता है, तब वह 'उत्सव' का रूप ले लेता है। दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव (DULF) के प्रथम दिवस का समापन इसी उत्सवी रंग में रंगा नजर आया। दिन भर चले गंभीर वैचारिक मंथन के उपरांत, जब संध्या का अवतरण हुआ, तो स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स का मुख्य मंच कवि सम्मेलन के नाम रहा। यह संध्या केवल कविताओं का पाठ नहीं, बल्कि भारतीय जनमानस की विविध भावनाओं-शौर्य, प्रेम और व्यंग्य-का एक जीवंत कोलाज थीं।

मंच पर समकालीन कवि सम्मेलन के नौ मूर्धन्य हस्ताक्षर उपस्थित थे। वीर रस के शिखर पुरुष डॉ. हरिओम पंवार, गीतों के राजकुमार डॉ. विष्णु सक्सेना, ओजस्विता की प्रतिमूर्ति कविता तिवारी और हास्य-व्यंग्य के सशक्त हस्ताक्षर सुदीप भोला के नेतृत्व में इस कवि सम्मेलन ने श्रोताओं को देर रात तक अपने सम्मोहन में बांधे रखा। इनके साथ रोहित चौधरी, डॉ. अशोक बत्रा, वरिंदर जटवानी, प्रदीप देशवाल और अटल नारायण ने काव्य की विविध विधाओं का जो समागम प्रस्तुत किया, वह डीयू के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा।

सम्मेलन के सबसे मर्मस्पर्शी क्षणों में से एक वह रहा, जब युवा कवि रोहित चौधरी ने माइक संभाला। अपनी रचनाओं से पूर्व उन्होंने अपने व्यक्तिगत संघर्ष को साझा किया, जो वहां उपस्थित हजारों छात्रों की अपनी कहानी प्रतीत हुई। रोहित की कविताओं में छोटे शहरों की संवेदना और महानगर की चुनौतियों का जो द्वंद्व था, उसने श्रोताओं के दिलों को गहराई से स्पर्श किया। उनकी प्रस्तुति ने सिद्ध किया कि प्रतिभा किसी भूगोल की मोहताज नहीं होती।

कवि सम्मेलन के मंच पर जब ओज और तेज की प्रतिमूर्ति कविता तिवारी का आगमन हुआ, तो वातावरण में एक विद्युतीय ऊर्जा का संचार हो गया। अपनी विशिष्ट और बुलंद आवाज के लिए पहचानी जाने वाली कविता तिवारी ने मंच से वीर रस और राष्ट्रभक्ति की ऐसी अविरल धारा प्रवाहित की, जिसने श्रोताओं की धमनियों में रक्त के प्रवाह को तेज कर दिया।

उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह सिद्ध किया कि राष्ट्र-आराधना में 'नारी शक्ति' का स्वर सबसे प्रखर होता है। उनका काव्य-पाठ केवल शब्दों का उच्चारण नहीं, बल्कि राष्ट्र की सोई हुई चेतना को जगाने वाला एक 'आह्वान' था।

गंभीरता के मध्य हास्य का संतुलन साधने का कार्य डॉ. अशोक बत्रा, वरिंदर जटवानी, प्रदीप देशवाल और अटल नारायण ने बखूबी किया। हास्य यहाँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक विसंगतियों पर कटाक्ष का माध्यम था।

डॉ. अशोक बत्रा ने अपनी विशिष्ट शैली में व्यवस्था की खामियों को उजागर किया। वरिंदर जटवानी और प्रदीप देशवाल ने अपने छंदों और वन-लाइनर्स के माध्यम से वर्तमान जीवनशैली पर तीखे व्यंग्य किए। अटल नारायण की प्रस्तुति ने तनावपूर्ण वातावरण को हल्का किया। इन कवियों ने यह स्थापित किया कि एक स्वस्थ समाज के लिए स्वयं पर हंसने की कला कितनी अनिवार्य है।

युवाओं के बीच बेहद लोकप्रिय सुदीप भोला ने मंच पर आते ही कवि सम्मेलन को एक नई गति प्रदान की। सुदीप की विशेषता उनकी 'पैरोडी' और गायन शैली है, जो पारंपरिक कविता को आधुनिक संदर्भों से जोड़ती है।

उन्होंने राजनीतिक घटनाओं और समसामयिक मुद्दों को जिस लयात्मकता के साथ प्रस्तुत किया, उसने युवा श्रोताओं के साथ सीधा संवाद स्थापित किया। उनकी रचनाएं केवल हास्य नहीं, बल्कि एक 'सोशल कमेंट्री' थीं, जिसने तालियों के साथ-साथ विचार करने पर भी विवश किया।

रात्रि के गहराते ही मंच का वातावरण वीर और हास्य से निकलकर 'श्रृंगार' की ओर मुड़ गया। गीतों के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. विष्णु सक्सेना ने जब अपनी मखमली आवाज़ में प्रेम और विरह के गीतों का पाठ किया, तो पूरा खेल परिसर एक रूमानी आभा में डूब गया। उनकी रचना—"तुम हमारी कसम तोड़ दो, हम तुम्हारी कसम तोड़ दें..."- ने श्रोताओं को सामूहिक गान के लिए विवश कर दिया।

विष्णु सक्सेना ने सिद्ध किया कि शोर-शराबे के इस दौर में भी, सुरीले और अर्थपूर्ण गीतों का स्थान अछूता है। उनकी उपस्थिति ने सम्मेलन को एक साहित्यिक और सांगीतिक ऊंचाई प्रदान की। सम्मेलन का चरमोत्कर्ष तब आया, जब 'वीर रस' के पर्याय डॉ. हरिओम पंवार ने मंच संभाला। 'राष्ट्र प्रथम' की थीम वाले इस महोत्सव में उनका काव्य-पाठ किसी ज्वालामुखी के विस्फोट के समान था। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से सीमा-सुरक्षा और राजनीतिक इच्छाशक्ति पर जो बेबाक टिप्पणी की, उसने श्रोताओं की धमनियों में रक्त के प्रवाह को तेज कर दिया।

डॉ. पंवार ने केवल कविता नहीं पढ़ी, बल्कि राष्ट्र की सोई हुई चेतना को ललकारा। उनका हर शब्द एक अंगारे की तरह था, जिसने वहां मौजूद युवाओं को यह अहसास कराया कि राष्ट्रभक्ति केवल एक भावना नहीं, बल्कि एक दायित्व है। जब उन्होंने अपना पाठ समाप्त किया, तो पूरा सदन उनके सम्मान में खड़ा हो गया—यह उस रात का सबसे सशक्त दृश्य था।

दिल्ली विश्वविद्यालय साहित्य महोत्सव का यह कवि सम्मेलन केवल मनोरंजन की एक रात नहीं थी, बल्कि यह 'रस-निष्पत्ति' का एक अद्भुत उदाहरण था। नौ कवियों ने मिलकर भावनाओं का एक ऐसा इंद्रधनुष रचा, जिसमें संघर्ष, प्रेम, हास्य और राष्ट्रवाद के सभी रंग विद्यमान थे। यह आयोजन इस बात का प्रमाण बना कि डिजिटल युग की आपाधापी में भी, शब्दों की शक्ति और कविता का जादू आज भी अक्षुण्ण है।

जय हिन्द! राष्ट्र प्रथम!

चित्र साभार: हर्षवर्धन, फोटोग्राफी टीम

The stage becomes a battlefield of emotion.

WHEN THE STAGE SPOKE

Day 2 at DULF, National School of Drama in Action (Kaal Roopam)

Movement carries memory

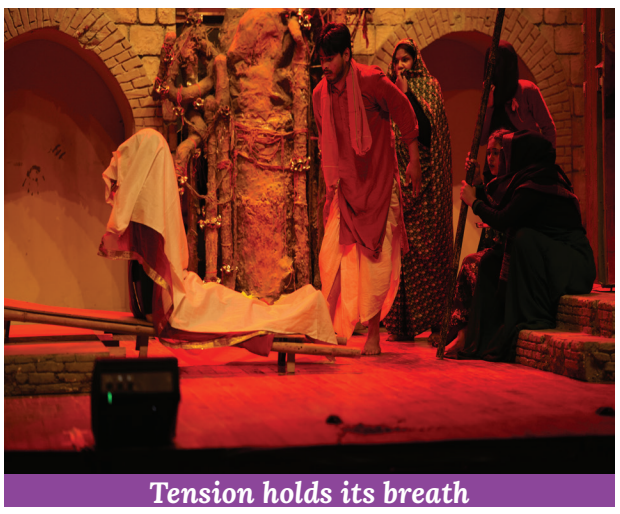

Tension holds its breath

Laughter and defiance share the stage

And the audience witnesses the magic.